जैन आहार प्रक्रिया और आधुनिक विज्ञान

डा. रज्जनकुमार

संसारी जीव को भोजन या आहार की आवश्यकता पड़ती है। आहार जीवननिर्वाह के लिए आवश्यक है क्योंकि प्रत्येक जीवधारी को भूख लगती है और उसे शांत करने के लिए आहार अनिवार्य है। मुख्य रूपसे आहार क्षुधा शांति हेतु ग्रहण किया जाता है, परंतु अपरोक्ष रूप में यह जीव शरीर के पोषण के लिए अनिवार्य है। प्राय: यह देखा गया है कि किसीभी जीवधारी को अगर दीर्घ काल तक आहार नहीं दिया जाता है तो धीरे-धीरे उसका शरीर कमजोर होता जाता है और अंत में नष्ट हो जाता है। अर्थात् आहार शरीर टिकाए रखने के लिए आवश्यक है। शरीर रक्षा के साथ साथ आहार जीवधारियों को ऊर्जा प्रदान करता है जिसकी सहायता से सभी प्रकार के कार्यों का संचालन कुशलतापूर्वक होता है।

जीवधारियों का शरीर रेल के इंजिन, मोटर इंजिन के समान ही है। जिस प्रकार एक इंजिन को चलाने के लिए उसे ऊर्जा प्रदान करने की आवश्यकता होती है, जो उसे कोयला जलाकर पानी को भाप में बदलकर अथवा डीजल, पेट्रोल या विद्युत आदि के रूप में दी जाती है, उसी प्रकार जन्तुओं के लिए भी उनके कार्य करने के लिए ऊर्जा प्रदान करना परमावश्यक है। किसी भी शारीरिक कार्य को करने में ऊर्जा का क्षय होता है। इस क्षय हुई ऊर्जा की पूर्ति के लिए शरीर के तत्त्व ईंधन का काम करते हैं। अत: शारीरिक कार्य करने में प्रत्येक जीवधारी के शरीर के तत्त्वों का क्षय बराबर होता रहता है। यदि जीव इन क्षय हुए तत्त्वों को पुन: शरीर को प्रदान कर उनकी कमी को पूरा न करता रहे तो धीरे-धीरे उसका शरीर दुर्बल होता जाएगा और अंत में बिलकुल नष्ट हो जाएगा। आहार इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है। प्रतिदिन के उपयोग के लिए संचालन शक्ति प्रदान करने के अतिरिक्त जीवों के शरीर के भिन्न-भिन्न अंगो की वृद्धि के लिए जिन-जिन तत्त्वों की आवश्यकता होती है उन सबकी पूर्ति आहार द्वारा ही होती है। आहार के इस महत्त्व का प्रतिपादन जैन ग्रंथों में हुआ है। जैन विद्वानों ने अपनी रचनाओं में आहार के लक्षण, विभेद कौनसे आहार लेने योग्य हैं, कौन से आहार अयोग्य है आदि कई महत्वपूर्ण तथ्यों पर प्रकाश डाला है। उन्होंने आहार लेने की प्रक्रियाओं का भी उल्लेख किया है। प्रस्तुत निबंध में जैनों की आहार प्रक्रियाओं का विवेचन आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में किया जा रहा है।

जैन ग्रंथों में तीन प्रकार की आहार प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है - १. ओजाहार २. लोमाहार और ३. प्रक्षेपाहार। आहार प्रक्रिया से तत्पर्य जीवों द्वारा आहार ग्रहण करने की विधिसे है।

१. ओजाहार - अपने उत्पत्ति स्थान में आहार के योग्य पुद्गलों का जो समूह होता है वह 'ओज' कहलाता है और इसे जब आहार रूप में ग्रहण किया जाता है तो वह ओजाहार कहलाता है। जन्म के पूर्व शिशु द्वारा माता के गर्भ में सर्वप्रथम 'जो आहार शरीर पिण्ड द्वारा ग्रहण किया जाता है, वह ओजाहार है। सामान्य तथा ओजाहार जीव के शरीर द्वारा ग्रहण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया जाता है।

माँ के गर्भ में पल रहा शिशु योजनली (Placenta) द्वारा आहार ग्रहण करता है। शिशु जब गर्भ में विकास कर रहा होता है तब उसे यह ज्ञान नहीं होता है कि किस प्रकार से आहार लिया जाए इसके अतिरिक्त आहार ग्रहण करने हेतु कोई निश्चित अंग भी स्पष्ट रूप से नहीं बन पाता है। लेकिन जीव को अपनी जीवन-रक्षा के लिए आहार तो लेना ही पड़ता है। अत: शिशु को नाभिनाल या योजनाली निकल आती है और इसीके माध्यम से उसे आहार की आपूर्ति होती रहती है। आहार के रुप में शिशु माता के रजांश का ही उपभोग करता है और यह रजांश उसके उत्पत्ति स्थान को चारों तरफ से घेरे रहता है। जीव वैज्ञानिको ने अमीबा नामक जीव को भी ओजाहारी ही कहा है। यह एक अत्यंत सूक्ष्म जीव है और मात्र एक इन्द्रिय स्पर्श से युक्त होता है। परंतु हमें यहाँ यह भी जानना होगा कि अमीबा जैन ग्रंथों में प्रतिपादित एकेन्द्रिय से बिलकुल अलग है। क्योंकि जैनाचार्योंने जिन एकेन्द्रिय की व्याख्या की है वह स्थावर है जबकि अमीबा एकेन्द्रिय होते हुए भी त्रस अर्थात् गतिशील है। अमीबा जिस वस्तु का आहार करना चाहता है उसे चारों तरफ से घेर लेता है। इस हेतु वह स्यूडोपोडिया (Psuedopodia) का निर्माण करता है जो उसके शरीर से निर्मित होते है। जब वह आहार कर लेता है तो उसका स्यूडोपोडिया समाप्त हो जाता है। ओजाहार के संबंधमें यह पहले ही कहा जा चुका है कि यह शरीर द्वारा अर्थात् त्वचा की सहायता से होता है।

जीव विज्ञान में कुछ ऐसे भी जीवों का उल्लेख किया गया है जो दूसरे जीवों के शरीर में उत्पन्न होते हैं, वहीं निवास करते हैं, वहीं संतानोत्पति करते हैं, जीवन की संपूर्ण क्रियाओं का सम्पादन करते हैं और मृत्यु को भी प्राप्त करते है। उन्हें परजीवी (Parasites) कहा जाता है। ये सभी परजीवी ओजाहारी होते हैं। मलेरिया, फाइलेरिया जैसे रोगों का कारण ये परजीवी ही हैं। ये मच्छर मनुष्य, पशु के शरीर में अपना जीवन चक्र पूर्ण करते हैं। प्रक्रिया इस प्रकार चलती है मच्छर (मादा) जब मनुष्य को काटती है तब उसके शरीर में पल रहा परजीवी मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। यह मनुष्य के शरीर में पहले यकृत (Liver) में पलता है तत्पश्चात् वहाँ से लाल रक्त में चला आता है। यहाँ यह लाल रक्त कणों को अपना आहार बनाता है। अब जब मच्छर पुन: प्रभावित व्यक्ति को काटता है (खून चूसता है) तो वह परजीवी मच्छर के शरीर में चला आता है और इस तरह से यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। चूंकि ये परजीवी अपने उत्पत्तिस्थान में स्थित पुद्गल (लहू के कण) का ही आहार करते हैं और यह ओजाहार के रूप में ही लिया जा सकता है और यही कारण है कि मलेरिया आदि जैसे रोगों को फैलानेवाले परजीवी ओजाहारी कहे गए हैं।

वनस्पति को भी एकेन्द्रिय और स्थावर जीव माना गया है। ये भी 'ओजाहारी ही होते हैं। आहार की इस प्रक्रिया में वनस्पति या पौधे अपनी पत्तियों, शाखाओं, शरीर के समस्त हरे भाग (पर्णशाद) द्वारा वायुमंडल से कार्बनडायइक्साइड गैस को सोखते हैं। फिर वे शोषित पदार्थ जड़ों से आए भोजन के जलीय भाग में धुल जाते हैं। तत्पश्चात् प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) क्रिया द्वारा इसमें रासायनिक प्रतिक्रिया होती है जिससे शक्कर बनता है। इसी शक्कर का कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाग स्टार्च, कुछ कार्बोहाइड्रेट, कुछ प्रोटीन आदि में बदल जाता है।

मेंढक, छिपकली आदि कुछ ऐसे जन्तु है जो अपने शरीर का तापक्रम बाह्य तापक्रम के घट-बढ़ के अनुसार बदल नहीं पाते हैं। विशेषकर मेंढक तो ताप के मामले में अत्यंत संवेदनशील प्राणी है। जीव-वैज्ञानिकों का कहना है कि इसके शरीर का तापक्रम बाह्य तापक्रम के समान हो जाता है अर्थात् अगर वातावरण का तापक्रम 0°C हो जाए तो इसके शरीर का तापक्रम भी 0°C हो जाएगा तात्पर्य यह है कि इसका शरीर बर्फ का गोला बन सकता है बर्फ 0°C सेंटीग्रेड पर बनता है) और ऐसी स्थिति में उसकी मृत्यु हो जाएगी। इसी प्रकार जब बाह्य वातावरण का तापक्रम अधिक होता है तब उसके शरीर का भी तापक्रम अधिक हो जाता है और ऐसी स्थिति में भी उसकी मृत्यु हो जाएगी। क्योंकि अधिक तापक्रम हो जाने पर उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग जल सकते हैं। अत: इन दोनों ही स्थिति से बचने के लिए मेंढक शीत और ग्रीष्म निष्क्रियता (Cold and Summer Hibernation) की स्थिति में आ जाता है। निष्क्रियता की इन दोनों ही स्थिति में मेंढ़क अपने शरीर को जमीन के नीचे छिपा लेता है और शांत होकर पड़ा रहता है। इस स्थिति में वह बाह्य वातावरण से भोजन नहीं ले पाता है। लेकिन जीवन रक्षण के लिए उसे आहार की आवश्यकता होती अवश्य है, इसकी पूर्ति यकृत में संग्रहीत वसा तत्त्व करता है। यह वसा तत्व धीरे-धीरे धुलता जाता है और मेंढक के शरीर रक्षण हेतु आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता रहता है। अत: यह प्रक्रिया भी ओजाहार ग्रहण करने का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

२. रोमाहार - जो आहार त्वचा या रोमकूप द्वारा ग्रहण किया जाता है उसे रोमाहार कहा जाता है। इसे लोमाहार भी कहा जाता है। सूत्रकृतांग निर्युक्ति में कहा गया है कि शरीर की रचना पूर्ण होने के बाद जो प्राणी बाहर की त्वचा या रोम छिद्रों द्वारा आहार ग्रहण करते हैं, उनका वह आहार लोमाहार है। त्वचा द्वारा जब भी आहार किया जाएगा तो आहार का स्पर्श अवश्य होगा क्योंकि त्वचा स्पर्शेन्द्रिय है और स्पर्श की अनुभूति (यथा चिकना, रुक्षादि) करना इसका स्वभाव है। अत: रोमाहार के बारे में यह भी कहा जा सकता है कि त्वचा या रोमों द्वारा स्पर्शपूर्वक लिया जानेवाला आहार रोमाहार है।

जीव वैज्ञानिकों की यह धारणा है कि बहुत से छोटे - बड़े जीव रोमाहार प्रक्रिया द्वारा ही आहार लेते हैं। मनुष्य, पशु श्वास-प्रश्वास के रूप में गैसों का जो आदान प्रदान करते हैं वह वस्तुत: रोमाहार का ही एक रूप है। छोटे-छोटे जीव जो त्वचा की सहायता से ही अपने आहार को सोख कर ग्रहण करते हैं वे भी रोमाहारी ही हैं। श्वास-प्रश्वास के अतिरिक्त भी मनुष्य, पशु निरंतर वायुमंडल से वायु का शोषण करते रहते हैं और उसकी इस प्रक्रिया में उसके असंख्य रोम कूप सहायक होते हैं। प्राय: यह देखा गया है कि मनुष्य अपनी त्वचा को जल तथा अन्य कई विधियों से स्वच्छ रखने का प्रयास करता है। इन सबका मुख्य प्रयोजन बन्द रोमकूपों का खोलना है। पशु भी नदी आदि मे तैरकर स्वयं अपने शरीर को साफ रखते है तथा उन्हें पालने वाले व्यक्ति भी उनकी सफाई का ध्यान रखते हैं। इन्हें साफ रखना इसलिए आवश्यक है क्योंकि इन्हीं छिद्रो द्वारा शरीर के अंदर की गर्मी तथा अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकृत पदार्थ बाहर निकलते हैं तथा बाहर की शुद्ध वायु भी शरीर के अंदर जाती है। इन प्रक्रियाओं से व्यक्ति या पशु स्वस्थ तथा प्रसन्न रहता है। यद्यपि यह प्रक्रिया उस रूप में आहार ग्रहण करने के समान नहीं है जिस रूप में आहार ग्रहण करना समझा जाता है। लेकिन फिर भी इसे आहार का एक रूप तो माना ही जा सकता है।

शीत, ग्रीष्म निष्क्रियता के समय मेंढक भी रोमाहार प्रक्रिया द्वारा ही आहार ग्रहण करता है। क्योंकि इस परिस्थिति में मेंढक त्वचा के द्वारा ही श्वसनादि की क्रिया संपन्न करता है। जैन ग्रंथों में यह स्पष्ट रुप से लिखा है कि रोमाहार त्वचा द्वारा होता है।

वनस्पति भी रोमाहारी होते है। पौधों कि जडें रोमों की सहायता से भूमि से खनिज पदार्थों से युक्त जलीय घोल सोखते है और यही घोल पौधों की पत्तियों शाखाओं द्वारा शोषित गैसों से मिलते है। इन दोनों के परस्पर मिलने से ग्लूकोज, स्टार्च प्रोटीन जैसे जटिल तत्वों का निर्माण होता है और ये तत्त्व ही पौधों के शरीर (पत्तियाँ, शाखा तना आदि भागों) के निर्माण में सहायक होते है।

३. प्रक्षेपाहार-ग्रास या कौर रुप में जो आहार ग्रहण किया जाता है उसे प्रक्षेपाहार कहा जाता है। इसे कवलाहारके भी नाम से जाना जाता है। मनुष्य, पशु अपना आहार कवलाहार रुप में ही ग्रहण करते है। वैज्ञानिकों की भी मान्यता कवलाहार के संबंध में जैनाचार्यों के समान ही है।

आहार ग्रहण करने की प्रक्रिया कि इस व्याख्या के पश्चात हमारे समक्ष यह प्रश्न उठ खडा होता है कि कौन से जीव को ओजाहारी माना जाए. किसे रोमाहारी या प्रक्षेपाहारी माना जाए। क्योंकि उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि कोई जीव अगर ओजाहारी है तो वह रोमाहार प्रक्रिया द्वारा भी आहार ग्रहण कर रहा है। कोई एक अवस्था में मात्र ओज को ही आहार रुप में ले रहा है तो किसी अन्य अवस्था में वह रोमाहारी भी है और कभी-कभी प्रक्षेपाहारी भी! कहने का अर्थ यह है कि किस प्रकार हम यह स्पष्ट रुप से जान ले कि वह जीव मात्र ओजाहारी है, या रोमाहारी है या कवलाहारी है या तीनों में से किसी दो विधि से या तीनों ही विधि से आहार लेता है। इस समस्या का समाधान करते हुए सूत्तकृतांग निर्युक्ति में लिखा गया है कि "सभी अपर्याप्त जीव ओजाहारी है" इसके अतिरिक्त जब तक औदारिक रुप में दृश्यमान शरीर उत्पन्न नहीं होता, तब तक तैजस और कार्मण शरीर तथा मिश्र शरीरों द्वारा भी 'ओज' को ही आहार रुप में ग्रहण किया जाता है। इसके साथ-साथ औदारिक शरीर की उत्पत्ति होने के बाद भी जब तक इन्द्रिय, प्राण, भाषा, मन की उत्पत्ति नहीं होती तब तक प्राणी ओजाहार विधि से ही आहार लेते है। अर्थात् पर्याप्त अवस्था पाने के पूर्व जीव ओजाहारी ही होता है।

अपर्याप्त जीव जब पूर्ण विकसीत हो जाते है तो अपना आहार लोमाहार प्रक्रिया द्वारा भी लेते है। क्योंकि विकसित जीव की इन्द्रियाँ विकास की अवस्था को प्राप्त कर लेती है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वचादिके माध्यम से भी आहार ग्रहण करने लगती है। यही कारण है कि गर्भ में पल रहा शिशु शीतलता आदि संवेदनाओं को ग्रहण करता है और उसीके अनुरुप अपने मनोभावों को भी व्यक्त करता है। अर्थात अगर यह शीतलता उसके अनुरुप है तो वह प्रसन्न होता है और विपरीत होने पर अप्रसन्न होता है। अर्थात् वह लोमाहार क्रिया द्वारा आहार ग्रहण करता है। लेकिन हम यह भी जानते है कि यही विकसित शिशु जब गर्भ से बाहर आता है तो अपना आहार कवलाहार के रुप में भी लेता है। अर्थात गर्भस्थ शिशु जब अपर्याप्त अवस्था में रहता है तो ओजाहारी होता है विकास की अवस्था में आ जाने के बाद ओजाहारी और लोमाहारी दोनों प्रक्रियाओं से आहार लेता है। जब वह गर्भ से बाहर निकल आता है उस समय वह लोमाहारी एवं कवलाहारी दोनों ही विधि से आहार लेता है। तात्पर्य यह है कि पशु या मानव तीनों ही विधियों से आहार लेते है।

वनस्पति ओजाहार एवं लोमाहार के रुप में जीवन पर्यंत आहार लेते है । क्योंकि वनस्पति जड से जलीय घोल को सोखते है तथा पत्तियों, तनाओं आदि के द्वारा गैसो का शोषण करते है ये क्रमशः लोमाहार एवं ओजाहार विधि द्वारा ग्रहण किया हुआ आहार होता है । अतः यह स्पष्ट हो गया कि अपर्याप्त जीव ओजाहारी है । विकसीत जीव ओजाहारी, लोमाहारी तथा लोमाहारी कवलाहारी है । वनस्पति लोमाहारी एवं ओजाहारी है ।

जैन दर्शन में प्रतिपादित नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चतुर्गतियों का निर्धारण किया गया है । इनमें से देवता और नारकी कवलाहारी नहीं है तथा तिर्यंच और मनुष्य कवलाहारी हैं बिना कवलाहार लिए इनका शरीर नहीं टिक सकता है क्योंकि ये औदारिक शरीरी है और औदारिक शरीर को टिकाए रखने के लिए कवलाहार आवश्यक है । पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीव भी कवलाहारी नहीं हो सकते क्योंकि इन्हें मात्र एक इन्द्रिय स्पर्श की होती है और यह स्पर्श त्वचा के द्वारा ही होता है । त्वचा के द्वारा लोमाहार ही संभव है । अतः ये या तो ओजाहारी हो सकते है या लोमाहारी या दोनों। वनस्पति के बारे में तो यह पूर्व में ही बता दिया गया है कि ये ओजाहारी एवं लोमाहारी साथ साथ है । जैसा कि विज्ञान का मत है कि जीव जो भी आहार लेता है उसका पाचन होता है और इस क्रिया के फलस्वरुप जो पाचन रस बनते है उन सबका शोषण त्वचा द्वारा ही होता है । अतः इस रुप में तो प्रत्येक जीव लोमाहारी ही है । प्रत्येक जीव के लिए श्वसन क्रिया एक आवश्यक प्रक्रिया है और यह निरंतर चलता रहता है तथा यह वायु के रुप में हमारे चारों तरफ है उपस्थित है । इस वायु का ग्रहण त्वचा के तथा नासिका द्वारा होता है । त्वचा के द्वारा होने पर यह लोमाहार है । लेकिन जीव की उत्पति-स्थान के चारों तरफ जो वायु फैली है वह 'ओज' हुई और जीव निरंतर इस ओज का उपयोग करता है । अतः वह ओजाहारी भी हुआ । कहने का अर्थ यह हुआ कि सामान्य रुप से सभी जीव ओजाहारी एवं लोमाहारी है । कुछ भिन्नता है तो वह कवलाहार को लेकर लेकिन इसे भी स्पष्ट करते हुए यह कहा गया है कि औदारिक शरीर धारी जीव अपना आहार कवलाहार के रुप में लेते है और इस कोटिमें तिर्थंच और मनुष्य आ जाते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ :-

१. भावाहारो तिविहो ओए लोमे य पक्खेवे। सूत्रकृतांग निर्युक्ति, १७०
लोमाहारा पक्खेवाहारा ओयाहारा पज्ञापना पद २८/८,९
सरीरेणोयाहारो तयाइ फासेण लोम आहारो।
पक्खेवाहारो पुण कवलिओ होइ नायव्वो।।
कर्मग्रंथ (भाग-४), गा.टी.७

2. Amoeba captures and engulfs its prey by means of the Psuedopodia. Psuedopodia are formed at the points, Where the food comes in contact with the surface of the body-Modern Text Book of zoology : Invertebrate Kotpal, P.65
3. Malarial Parasites are sucked up by female anopheles Mosquito and are later on injected into the human blood by the female anopheles. Invertebrate zoology, Dr T.C. Majupuria PP. 126, 128-134
4. Photosynthesis consists in the building up of simple carbohydrates such as sugars in the green leaf of the chloroplasts in the presence of sunlight (as a source of energy) from carbon dioxide and water absorbed from the air and the soil respectively. Botany for degree students, A.C. Dutta, P.312.
5. Frog is cold blooded or poikilothermal or ectothermal animal as its body temperature does not remain constant but fluctuates with that of environment. It digs down into the damp earth at the bottom of ponds to pass the adverse conditions of winter and rest. This going of under ground is known as winter sleep or hibernation. During hibernation period lung breathing is stopped, while skin breathing continues. Moreover it does not feed but to keep up its vital activites it consumes the reserve food stored in the form of fat bodies. Similarly during the summer it once again goes underground and this is called summer sleep -chordate zoology and animal Physiology, Jordan and verma, P.235

६ सरीरेणोयाहारा तयाय फासेण लोमआहारो
पक्खेवाहारो पुण कावलिओ होइ नायव्यो ।। सूत्रकृतांग निर्युक्ति. १७१

७. सूत्रकृतांग निर्युक्ति, १७२, एवं
भगवती सूत्र, प्रथम भाग, (बेचरदासजी), पृ. ९४

८. ओज आहारा सव्वे जीवा आहारणा अपज्जत्ता । आगम उद्धृत सूत्रकृतांग, हि.श्रु. मुनिश्री हेमचंद्रजी, पृ.२१८

९. तेएण कम्मएणं आहरेइ अणंतरं जीवे तेणं परं मिस्सेणं जाव सरीरस्स निप्पंत्ति । उद्धृत वही. पृ.२१८

१०. सूत्रकृतांग, हि. श्रु. हेमचंद्रजी महाराज, पृ. २१९,
श्री सूत्रकृतांगम्, हि. श्रु. पं. अम्बिकादत्त ओम्ता, पृ. २०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org